।। श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।।

पवित्र गो

गो सेवा का तात्पर्य क्या है?
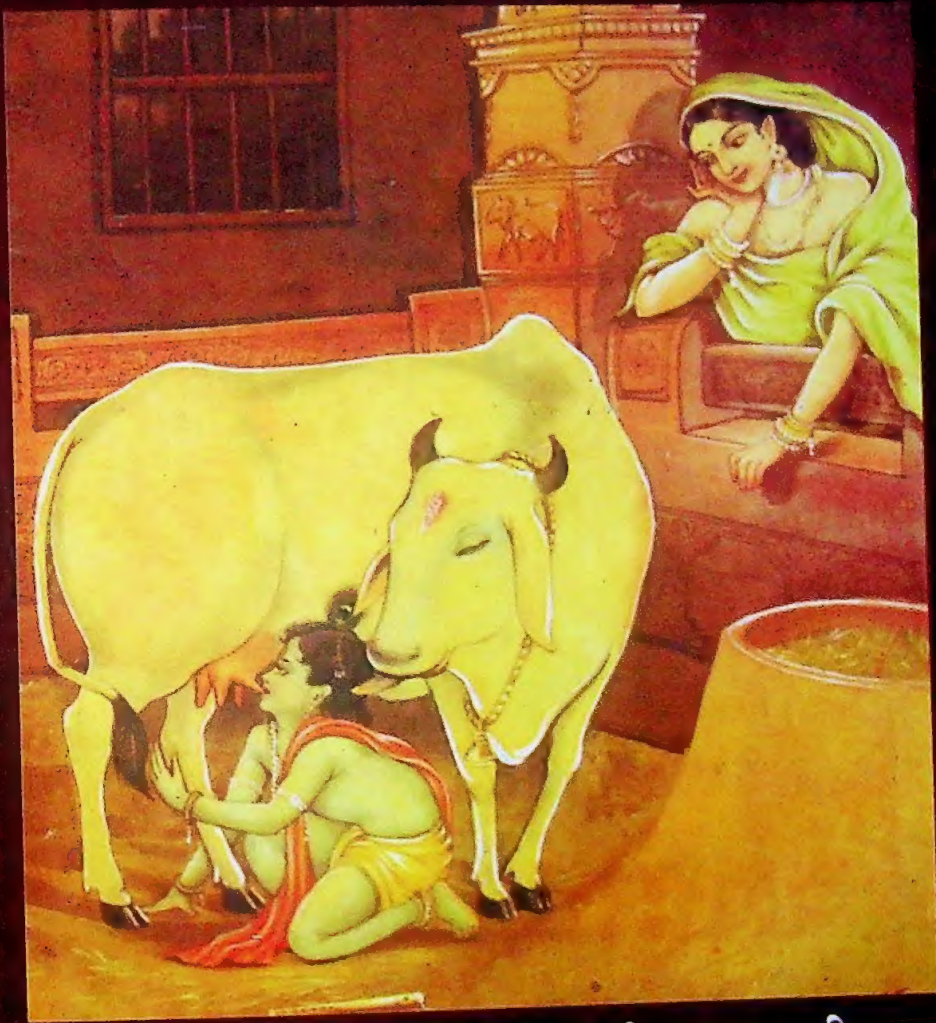
परम पूज्य श्री श्री हरिदास शास्त्री महाराज जी

की शिक्षाओं पर आधारित

मातरः सर्वभूतानाम् गावः सर्वसुखप्रदाः

"गो सबकी माँ हैं, एवं समस्त सुखों को देने वाली हैं"

श्री गदाधर गौरहरि प्रेस, वृन्दावन

पवित्र गो

प्रकाशक :
श्री हरिदास शास्त्री
"श्री हरिदास निवास",
प्राचीन कालीदह,
वृन्दावन–२८११२१
मथुरा
उ. प्र.

फोन : ०५६५–३२०२३२२, ३२०२३२५

प्रथम संस्करणम्
न्यौछावर : ५०/–

प्रकाशन तिथि :
ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशत श्रील
विनोद बिहारी गोस्वामी तिरोभाव महोत्सव
पौष कृष्णा द्वितीय
(१४ दिसम्बर २००८, रविवार)
श्रीगौरांगाब्द : ५२३

मुद्रक :
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
(श्रीहरिदास निवास)
प्राचीन कालीदह, वन्दावन (मथुरा) उ. प्र.

पवित्र गो

गो सेवा का तात्पर्य क्या है?

परम पूज्य श्री श्री हरिदास शास्त्री महाराज जी
की शिक्षाओं पर आधारित

लेखक
जपेश बन्द्योपाध्याय
पारोमिता बन्द्योपाध्याय

मातरः सर्वभूतानाम् गावः सर्वसुखप्रदाः
"गो सबकी माँ हैं, एवं समस्त सुखों को देने वाली हैं"

श्री गदाधर गौरहरि प्रेस, वृन्दावन

पवित्र गो

विषय सूची

पृष्ठ

गो-सेवा का तात्पर्य क्या है?

"गो-सेवा?" पूछेंगे आधुनिक युग के लोग जो पाश्चात्य पद्धति में शिक्षित हों। "इतना कुछ के रहते हुए गो-सेवा ही क्यों? गो की विशेषता क्या है? वह तो केवल एक पशु है।"

उसके उत्तर में हम कहते हैं, "मगर गो साधारण पशु नहीं है। और उनकी सेवा करने से ऐसे फल प्राप्त होते हैं जिसकी चिन्ता भी हम नहीं कर सकते हैं। हमारे पूर्वज इतने विचक्षण थे कि वह गो के इस अचिन्त्य स्वरूप को जानते थे और इसी लिए पूर्वकाल में हर घर में गो एवं तुलसी का वास होता था।"

अनादि काल से गो को एक पवित्र प्राणी की संज्ञा दी गई है। पवित्र प्राणी का अर्थ यह है कि वह सभी कल्मषों व मलिनताओं से परे है एवं स्वयं सभी को पवित्र बना डालने की क्षमता रखता है। इस ग्रन्थ में हमलोग इस बात की पुष्टि करेंगे व गो की पवित्रता को स्थापित करेंगे। गो-सेवा के वास्तविक अर्थ को भी इसमें समझाया जाएगा एवं इसका भी प्रतिपादन होगा कि मानव समाज के लिए गो-सेवा कैसे हितकारी है। आइये पवित्र गो को बेहतर जानें।

धर्म सब को धारण करे

महाभारत, शांति पर्व, अध्याय १०९ में कहा गया है-

धारणात् धर्म इत्याहु:

इसका तात्पर्य यह है कि धर्म वह है जो सब को धारण करे, जो सब की रक्षा करे, जो सब को पुष्ट करे। अत: धर्म द्वारा व्यक्ति अपने आप का, अपने परिवार का, अपने समाज का, अपने देश का व अंतत: सम्पूर्ण मानव जाति का रक्षण-पोषण करता है। धार्मिक व्यक्तिगणों के हृदय में कई प्रकार के सद्‌गुण विद्यमान रहते हैं जिनके द्वारा वह मानव जाति के रक्षण-पोषण का कार्य करते हैं। इनमें प्रमुख हैं दो गुण-परोपकार व निरपराध।

"परोपकार" शब्द का अर्थ है दूसरों के हित के लिए कार्य करना। अत: परोपकारी व्यक्ति नि:स्वार्थ रूप से परहित के कार्य में रत रहता है। निरपराधी व्यक्तिगण ऐसा कोई भी कार्य नहीं करते हैं जिससे अपर व्यक्ति को किसी प्रकार का क्लेश पहुँचे। यह समझना सरल है कि यदि यह दो सद्‌गुण समाज के अधिकाधिक लोगों में विकसित हो जाएं तो इस संसार का स्वरूप पूर्ण रूप से बदल सकता है।

इस जगत के सृष्टिकर्त्ता की यही इच्छा है कि मनुष्य का जीवन सुखमय, शांतिमय व मंगलमय हो। इसलिए वह निरपराधी और परोपकारी लोगों से प्रसन्न रहते हैं, क्यों कि इन्हीं दो सद्‌गुणों से युक्त लोग संसार को सुखमय व शांतिमय बना सकते हैं। जिससे कि मनुष्यगण अपने अंदर इन सद्‌गुणों को विकसित कर सकें, सृष्टिकर्त्ता प्रभु ने हमारे समक्ष एक निरपराधी व परोपकारी प्राणी का आदर्श उदाहरण बना कर रखा है। और यह आदर्श प्राणी

है गो! संस्कृत शब्द "गो" से गाय, साँढ़ व बछड़े-बछियों के समाहार को समझना चाहिए, न कि केवल गाय को। इस ग्रन्थ में "गो" शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है।

और अग्रसर होने के पूर्व कुछ और विषयों पर विचार करना उचित होगा।

भक्ति - सभी धर्मों का सार

संसार के विभिन्न लोगों की मानसकितायें व संस्कार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उस के अनुसार लोगों का धर्म भी भिन्न-भिन्न होता है। परन्तु सभी धर्मों का परिपक्व फल है भगवद्भक्ति। श्रीमद्भागवत महापुराण की उक्ति है (१.२.६)

"स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे"

"मनुष्य का परम धर्म वही है जिससे अधोक्षज (श्री हरि) में भक्ति उत्पन्न हो।"

आजकल "भक्ति" शब्द से लोग मात्र कुछ कार्य-विशेष समझते हैं, जैसे पूजा करना, तीर्थ भ्रमण करना, कीर्तन करना, इत्यादि। परन्तु ईश्वर स्वयं शास्त्रों में समझाते हैं कि भक्ति का अर्थ है ईश्वर की नि:स्वार्थ सेवा। अब "सेवा" शब्द का सही अर्थ ज्ञात होना आवश्यक है। सेवा का अर्थ यह है कि सेवक केवल सेव्य की तुष्टि के लिए ही कार्य करे, किसी और कारण से नहीं, यहाँ तक कि अपनी तुष्टि के लिए भी नहीं। अत: भक्त, अर्थात् ईश्वर के सेवक का मन केवल एक ही विषय पर केन्द्रित रहता है - ईश्वर को संतुष्ट करना। उसे अपनी मुक्ति की भी चिन्ता नहीं रहती है।

इस रूप से ईश्वर की सेवा में रत रहने की आकांक्षा केवल किसी भक्त के संगति से ही मन में उत्पन्न होती है। जिन भक्त की संगति से इस प्रकार की आकांक्षा मन में उत्पन्न हो, उन्हें साधक गुरू रूप में स्वीकार करता है। फिर वह गुरू-सेवा में रत हो जाता है। साधक का मनोभाव परिपक्व होने पर गुरू सेवा ही ईश्वर सेवा बन जाता है और अंतत: वह सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वर का जानकर सम्पूर्ण सृष्टि की सेवा में रत हो जाता है।

"मनुष्य का परम धर्म वही है जिससे अधोक्षज (श्री हरि) में भक्ति उत्पन्न हो।"

श्रीमद्भागवतम् (१.२.६)

भक्ति का सार है भगवान की सेवा में तल्लीन रहना।

अब "सेवा" के विषय में थोड़ी और चर्चा करते हैं। "सेवा" शब्द का मूल अर्थ यह है कि सेवक के मन में सेव्य को संतुष्ट करने की ही चिंता हो, जिससे कि कभी भी किसी प्रकार का क्लेश उन्हें न पहुँचे। अत: सेवा में रत होने के कारण, सेवक का मन सर्वदा सेव्य के चिंतन में ही रत रहता है। यहाँ तक कि वह अपने व्यक्तिगत हित-अहित की चिंता भी नहीं करता है। इस अवस्था में सेवक का मन व हृदय सेव्य व्यक्ति के मन व हृदय से एक हो जाता है। सेव्य की रुचि ही सेवक की रुचि बन जाती है। सेव्य की इच्छाएँ ही सेवक की इच्छाएँ बन जातीं हैं। इस अवस्था को बोलते हैं "एकता" क्यों कि इस अवस्था में सेव्य व सेवक के मन एक-जैसे हो चुके होते हैं।

जब सेवक के मन व हृदय सेव्य व्यक्ति के मन व हृदय से एक हो जाए, तो सेवक के सभी कार्य सेव्य व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल होते हैं। सेवा करने की इस अनुकूल अवस्था को बोलते हैं "आनुकूल्य" या "अनुकूलता"।

अत: निर्णय यह हुआ कि सेवक के मन व हृदय में जब सेव्य व्यक्ति के मन और हृदय से एकता हो, तो उनका आचार संहिता होता है अनुकूलता या आनुकूल्य का।

अत: एक शुद्ध भक्त सर्वदा, चाहे वह किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, ईश्वर का आनुकूल्य ही करता रहता है। भक्त के इस मनोभाव को श्री गोविन्द लीलामृतम् ग्रन्थ (१३.११३) में सुंदर रूप से व्यक्त किया गया है।

तृप्तावन्यजनस्य तृप्तिमयिता दु:खे महादु:खिता:
लब्धै: स्वीयालिदु:खनिचयैर्नोहर्षबाधोदया:।
स्वेष्टाराधन तत्परा इह यथा श्री वैष्णवश्रेणय:
कास्ता ब्रूहि विचार्य चन्द्रवदने ता मद्वयस्या इमा:।।

"वह अन्य जनों की तृप्ति से स्वयं तृप्त होते हैं। उनके दु:ख से स्वयं महादु:खी होते हैं। परन्तु स्वयं सुख या दु:ख पाने से उनमें सुख दु:ख उदित नहीं होते हैं। इस भाव से भक्त गण अपने इष्ट देव की आराधना में तत्पर रहते हैं।''

गो - अनुकूलता का शिखर

"अनुकूलता'' का अर्थ समझने के पश्चात् अब हम यह देखेंगे कि पूर्ण रूप से जो प्राणी ईश्वर का व उनकी सृष्टि का आनुकूल्य करता है, वह है "गो''।

जैसे कि पहले समझाया गया है, निरपराधी व परोपकारी होना वह दो सद्‌गुण हैं जो ईश्वर को अत्यंत प्रिय हैं। यह तो एक सत्य है कि गो अत्यंत परोपकारी व निरपराधी प्राणी है। गो अपना सर्वस्व देकर केवल जगत का परोपकार करते हैं। यहाँ तक कि उनका मल मूत्र भी पवित्र हैं एवं सब को पवित्र कर देते हैं। किसी वैदिक यज्ञ को सुष्ठु रूप से अनुष्ठित करने के लिए यह आवश्यक है कि उस स्थान को गोबर से लेप कर पवित्र किया जाए। कई धार्मिक अनुष्ठानों में श्रद्धालुओं को अमृत-समान "पंच-गव्य'' का सेवन कराया जाता है। यह पंच-गव्य बनता है दूध, घी, दही, गोमूत्र व गोबर से। इसकी तुलना अब इस बात से कीजिए कि साधु-महात्माओं का मल-मूत्र अत्यंत अपवित्र व प्रदूषण फैलाने वाले होते हैं। अत: इस आधार पर कहा जा सकता है कि पूज्य देवतागण व महात्मा गण की परोपकारिता भी गो की परोपकारिता के सामने फीकी पड़ जाती है।

ईश्वर की सृष्टि के साथ अनुकूलता-पूर्ण व्यवहार कर गो ईश्वर का आनुकूल्य करते हैं। अत: वे ईश्वर के प्रिय प्राणी हैं।

मनुष्यगण यदि भक्ति मार्ग में अग्रसर होना चाहे तो उन्हे अपना अहंकार का त्याग कर, ईश्वर की अनुकूलता करने की आवश्यकता होगी। परन्तु ईश्वर की विशिष्ट सृष्टि-गो की बात कुछ और है। उनका अस्तित्व ही इसलिए है कि वे ईश्वर व उनकी सृष्टि का आनुकूल्य करें। उन्हें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वे प्रयत्न कर के अहंकार का नाश करें व अपने आप में शुद्धि लायें। गो अपने आप में शुद्ध हैं, पवित्र हैं, औरों को पवित्र करने वाले हैं। वे तो परोपकारी व निरपराधी प्राणी के आदर्श हैं। वे ऐसे प्राणी हैं जो एकमात्र ईश्वर का व उनकी सृष्टि की अनुकूलता करते हैं। अत: वे ईश्वर की अनुकूलता के चरम शिखर हैं। वे जन्म से ही ईश्वर के परम भक्त हैं।

गो एवं श्री कृष्ण - परस्पर अनुकूलताकारी

इस ब्रह्माण्ड में ईश्वर ने ८४ लाख योनियों की सृष्टि की है। यह योनियाँ जीवात्माओं के निवास स्थान के रूप में हैं, जिसमें जीवात्मा अपने कर्मों का धीरे-धीरे क्षय करता है एवं अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है। परन्तु गो की सृष्टि इन कारणों से परे है। ईश्वर ने गो की सृष्टि एक आदर्श के रूप में किया है, जिसे देखकर हमें प्रेरणा मिले एवं हम भी परोपकारी व निरपराधी बन कर ईश्वर का आनुकूल्य करें व अपने जीवन को धन्य करें। ईश्वर स्वयं अपने इस विशेष सृष्टि से इतना प्रेम करते हैं कि गो को उन्होंने अपने चिन्मय धाम में विशेष स्थान दिया है एवं उस धाम का नाम भी गो पर ही आधारित किया है। उस चिन्मय धाम का नाम है ''गोलोक धाम'' जहाँ साधक गण पहुँचने के इच्छुक रहते हैं। उदाहरणार्थ ऋक् मंत्र १.१५४.६ में है-

''तां वां वास्तून्युश्मसि गमध्ये यत्र गावो भूरिशृंगा: अयास:।''

''हम सब आपके गृह समूहों में पहुँचने के अभिलाषी हैं, जहाँ प्रशस्त शृंग वाले वांछितार्थ फलप्रद मंगलमय गो समूह विराजित हैं।''

चूँकि गो ईश्वर के साथ अनुकूलता-पूर्ण व्यवहार करते हैं, वे ईश्वर के प्रिय हैं। और चूँकि ईश्वर को अनुकूलता पसंद है, गो अनुकूलता करते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण ने एक छोटे बच्चे के रूप में ही पूतना जैसी भीषण राक्षसी का वध किया था। तो यह भी संभव था कि कारागार में आविर्भाव के पश्चात् मथुरानगरी में ही कंस का वध कर देते। अत: इससे हम जान सकते हैं कि उनका मथुरा से गोकुल चला जाना कंस के भय से नहीं था। वह तो संसार को अपनी लीलाओं से गो-सेवा का महत्व दर्शाना चाहते थें। इसी कारण से उन्होंने गो-सेवकों के बीच रहकर गोप-गोपी व गो के साथ मिलकर कई प्रकार की लीलाओं का प्रदर्शन किया।

गो से उनका गहरा संबंध है। उनके नाम हैं गोपाल व गोविन्द। उनका निवास स्थान था गोकुल। जिस समाज में वह रहते थे वह था गोप-गोपियों का। श्री व्रज धाम में उनका मुख्य कार्य था गो-सेवा। व्रजवासियों की गो सेवा से आकृष्ट होकर ही भगवान् श्री व्रजधाम में आविर्भूत हुए। अत: हम देखते हैं कि वेद-पाठ या तपश्चर्या या धन-ऐश्वर्य आदि से ईश्वर उतना आकृष्ट नहीं होते हैं जितना कि सरल व सच्चे भाव से किए गए गो-सेवा से। इससे भगवान् इतना आकृष्ट होते हैं कि वह सोलह कलाओं से युक्त अपने पूर्ण स्वरुप में श्री व्रजधाम में आविर्भूत हो जाते हैं।

श्री व्रजधाम में, व्रजवासियों के संग उन्होनें शुद्ध आध्यात्मिकता का प्रदर्शन किया और यह दर्शाया कि विशुद्ध आध्यात्मिकता का स्वरूप है भगवद्भक्ति, जिसका सार है एकता व अनुकूलता। यही है मूल शिक्षा जो भगवान् श्री कृष्ण ने श्री व्रजधाम में गोप-गोपियों के संग गो-सेवा के माध्यम से जगत् को दर्शाया। चूंकि गो पूर्ण रूप से ईश्वर की अनुकूलता करते हैं, ईश्वर उन से अत्यधिक प्रेम करते हैं। और चूंकि ईश्वर को उनका आनुकूल्य पसंद है, गो आनुकूल्य करते हैं।

पर्वत उठाकर गो का उत्कर्ष स्थापन

श्रीकृष्ण ने निज करकमलों द्वारा गोवर्धन पर्वत का उत्तोलन करके उन पर्वत को अमर कर दिया। यह इसलिए था क्योंकि गोवर्धन पर्वत व्रज के गो के चरने के लिए भूमि व घास प्रदान करते थे।

इस जगत में श्री कृष्ण ने एक विशिष्ट लीला द्वारा यह दर्शाया कि किस प्रकार वह गो सेवकों की रक्षा करते हैं तथा जगत् में उनकी गरिमा बढ़ाते हैं। एकबार उन्होंने व्रजवासियों को परामर्श दिया कि इन्द्र की पूजा न करके वह सब गोवर्धन पर्वत की पूजा करें क्यों कि गोवर्धन पर्वत गो चराने के लिए भूमि व घास प्रदान करते थे। ऐसा किए जाने पर क्रुद्ध इन्द्रदेव ने व्रजधाम को जलनिमग्न करने के लिए भारी वर्षा प्रारम्भ कर दिया। तब व्रज के गो व गो-सेवकों की रक्षा के लिए उन्होंने अपने वाम हस्थ की कनिष्ठिका पर गोवर्धन पर्वत को छत्र के रूप में धारण कर लिया एवं सात दिन तक उन्होंने सब की रक्षा की। अंतत: इन्द्रदेव अपना भूल जानकर श्री कृष्ण के चरणों पर गिर पड़े। इस प्रकार उन्होनें गो व गो-सेवकों की रक्षा की। श्री बृहद्भागवतामृतम् ग्रन्थ (१.१.७) में लिखित है।

गोवर्धनो जयति शैलकुलाधिराजः
यो गोपिकाऽभिरुदितो हरिदासवर्यः।

"गोवर्धन की जय हो जो कि पर्वतकुल के राजा हैं एवं जिनको गोपिकाओं द्वारा श्री हरि के दासों में सर्वश्रेष्ठ कहा गया।''

गोवर्धन पर्वत, जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, व्रजधाम के गोवंश के वर्धन के लिए गो चराने की भूमि व घास प्रदान करते थे। गो के प्रति किए गए इस सेवा से प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् ने उन्हें अपने कर कमलों से उठा कर उनकी गरिमा व प्रतिष्ठा को जगत् में बढ़ा दिया। गो-सेवकों की जय हो !

स्वयं भगवान गो बने

एकबार जब ब्रह्माजी ने श्री कृष्ण के गोधन को चुरा लिया था तो स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने अपने आप को असंख्य गाय, वृषभ व बछड़ों के रूप में विस्तृत कर लिया और एक वर्ष तक वह इन रूपों में विद्यमान रहें। भगवान् यह नहीं चाहते हैं कि मानव समाज एक दिन के लिए भी गो के पवित्र संग से वंछित रहे। अतः आवश्यकता पड़ी तो स्वयं गो बन कर घास खाए व गोशालाओं में रहे। यह घटना लगभग ५००० वर्ष पूर्व घटी थी। उस एक वर्ष के अंतराल में श्रीकृष्ण (गो के रुप में) के संतान जन्म लिए थे एवं उनके वंशज इस पवित्र भूमि की गोसंपदा में आज भी विद्यमान हैं।

जब ब्रह्माजी ने ब्रज के गो-संपदा को चुरा लिया, तो श्री कृष्ण ने अपने आप का विस्तार किया व असंख्य गाय, वृषभ व बछड़े-बछिया बन गए। इस रुप में वह एक वर्ष रहे।

गो - महादेव शंकर के अनन्य संगी

शंकर जी की पूजा के साथ उनके वाहन नन्दी का भी पूजन होता है।

इस पुण्य भारत भूमि में असंख्य स्थानों पर शिव लिंग की प्रतिष्ठा की हुई है जहाँ प्रतिदिन भक्तगण अधिकाधिक संख्या में पहुँच कर महादेव जी की आराधना करते हैं। शंकर जी के प्रत्येक मंदिर में स्थापित हैं उनके वाहन, नंदी बैल, जो उनके समीप बैठकर सर्वदा ईश्वर का दर्शन करते रहते हैं। भक्तगण शंकरजी के पूजन के साथ-साथ नंदी का भी सश्रद्ध पूजन करते हैं। इस प्रकार महादेव शंकर यह दर्शाते हैं कि उनकी आराधना के साथ-साथ गो की भी आरधना होनी चाहिए। भगवान् जी के अभिषेक में गो-दुग्ध द्वारा अभिषेक अनिवार्य है।

महादेव शंकर की जय हो जिनके अनन्य संगी हैं गो!

गो - सभी देवी-देवताओं का निवास स्थान

स्कन्दपुराण (आवन्त्य खण्ड, रेवाखण्ड, ८३.१०४-११२) में उक्त है - "गो सर्वदेवमयी और वेद सर्वगोमय हैं। गो के सींगों के अग्रभाग में नित्य इन्द्र निवास करते हैं। हृदय में कार्तिकेय, सिर में ब्रह्मा और ललाट में वृषभध्वज शंकर, दोनों नेत्रों में चन्द्रमा और सूर्य, जीभ में सरस्वती, दाँतों में मरुद्गण और साध्यदेवता, हुँकार में अंग-पद-क्रम सहित चारों वेद, रोमकूपों में असंख्य
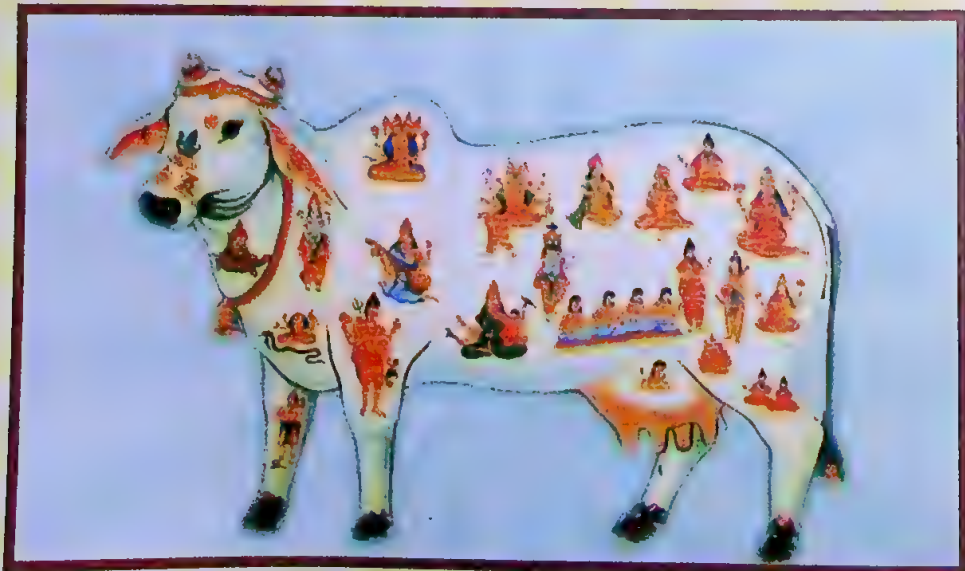
गो में सभी देवी-देवता, सभी तीर्थ एवं भगवान् विष्णु बसते हैं। अतः मात्र गो सेवा द्वारा सभी तीर्थ भ्रमण व सभी देवी-देवताओं का पूजन संभव है।

तपस्वी और ऋषिगण, पीठ में दंडधारी महाकाय महिषवाहन यमराज, स्तनों में चारों पवित्र समुद्र, गो-मूत्र में विष्णु-चरण से निकली हुई पापनाशिनी गंगाजी, गोबर में पवित्र, सर्वकल्याणमयी लक्ष्मीजी, खुरों के अग्रभाग में गन्धर्व, अपसराएँ व नाग निवास करते हैं। सागरान्त पृथ्वी में जितने भी पवित्र तीर्थ हैं, सभी गो के देह में रहते हैं। विष्णु सर्वदेवमय हैं, गो विष्णुजी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं। विष्णु व गो-दोनों के ही शरीर में देवता निवास करते हैं। अत: गो को मनुष्य सर्वदेवमय कहते हैं।''

गो के विश्व रूप का वर्णन अथर्व वेद, महाभारत, ब्रह्माण्डपुराण, पद्मपुराण, भविष्य पुराण, इत्यादि में भी किया गया है। जिस प्रकार भगवान् का विश्वरूप भगवद्गीता में समझाया गया है, उसी प्रकार गो के विश्वरूप का वर्णन इन शास्त्रों में किया गया है। चूंकि पवित्र गो सभी देवताओं का, सभी तीर्थों का, गंगाजी का व भगवान् विष्णु का निवास स्थान है, केवल गो-सेवा द्वारा ही, इन सब के पूजन का व तीर्थ भ्रमण करने का फल प्राप्त हो जाते हैं।

गो-सेवा का फल

यथा गौश्च तथा विप्रो यथा विप्रस्तथा हरिः।
हरिर्यथा तथा गंगा एते न ह्यवृषाः स्मृताः॥

"जैसे गो, वैसे विप्रगण, जैसे विप्रगण, वैसे श्री हरि,
जैसे श्री हरि, वैसी गंगाजी, यह सब पापनाशक हैं।''
पद्म पुराण (सृष्टि ४८.१५५)

जब गो तुष्ट होते हैं, तब सभी देवतागण व स्वयं श्री हरि तुष्ट होते हैं। उदाहरणार्थ, जब किसी के देहान्त के पश्चात् श्राद्धकर्म किया जाता है, तो सम्पूर्ण कर्म की समाप्ति के पश्चात् पिण्ड गो को खिलाया जाता है। यदि उस पिण्ड के भक्षण से गो तृप्त होते हैं, तो जिनके निमित्त श्राद्धकर्म किया जाता है, उस आत्मा को सद्गति प्राप्त होती है।

गो सेवा करने वालों को सुख व समृद्धि स्वयं गले लगाते हैं। महाभारत, अनुशासन पर्व ६९.१२-१३ में कथित है-

घासमुष्टिं परगवे दद्यात् संवत्सरं तु यः।
अकृत्वा स्वयमाहारं व्रतं तत् सार्वकामिकम्॥

"जो एक वर्ष तक प्रतिदिन स्वयं भोजन से पहले दूसरे की गो को घास प्रदान कर तुष्ट करता है, उसका वह व्रत समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है।''

गो इतना पवित्र प्राणी है कि उनके स्पर्श मात्र से पापों का क्षय होता है। तो गो-सेवकों की बात ही क्या जो एकता और अनुकूलता के साथ उनकी सेंवा में तल्लीन रहें। पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड ५७.१६४-१६५ में कथित है-

गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः। अतो मर्त्यः प्रपुष्टैस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
गवां रजः खुरोद्भूतं शिरसा यस्तु धारयेत्। स च तीर्थजले स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

"जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके गो का स्पर्श करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। जो गौओं के खुरों से उड़ी हुई धूल को शिर पर धारण करता है वह मानो तीर्थ के जल में स्नान कर लेता है और समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।"

गो को तृप्त करने का अर्थ है सभी देवी-देवताओं को तृप्त करना। और तृप्त देवी-देवतागण गो-सेवकों को इह लोक व परलोक में सभी प्रकार की संपदाओं से पूर्ण कर देते हैं। अतः महाभारत (अनुशासन ८३.५०-५२) में कथित है,

गोषु भक्तश्च लभते यद् यदिच्छति मानवः। स्त्रियोऽपि भक्ता या गोषु ता च काममवाप्नुयुः।।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी तामवाप्नुयात्। धनार्थी लभते वित्तं धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात् ।।
विद्यार्थी चाप्नुयाद् विद्यां सुखार्थी प्राप्नुयात् सुखम्। न किंचिद् दुर्लभं चैव गवां भक्तस्य भारत ।।

महाभारत में कथित है कि जो स्वयं भोजन से पूर्व दूसरे के गो को घास प्रदान कर तुष्ट करता है, उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

"गो में भक्ति रखने वाले मानव जो जो चाहते हैं, पाते हैं। जो स्त्रियाँ गो के भक्त हैं, उनकी भी सब कामनाओं की पूर्ति होती है। जो पुत्र चाहते हैं, उन्हें पुत्र प्राप्त होते हैं, जो कन्या चाहते हैं, उन्हें कन्या प्राप्त होती है, जो धन चाहते हैं उन्हे धन प्राप्त होता है, जो धर्म चाहते हैं, उन्हें धर्म प्राप्त होता है, जो विद्या चाहते हैं उन्हें विद्या प्राप्त होती है, जो सुख चाहते हैं, उन्हें सुख प्राप्त होता है। हे भारत! गो के भक्तों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।"

गो-सेवक तो यमराज से भी भीत नहीं होते हैं। गो सेवा की शक्ति से तो मनुष्य जन्म-मृत्यु के बंधन से भी मुक्त हो जाते हैं।

व्यथित समाज के लिए एक अमृततुल्य औषधि

ईश्वर ने मनुष्य की रचना उनके प्रतिनिधि के रूप में की है। उन्होने मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति और ज्ञान का स्रोत-शास्त्र प्रदान किया है जिससे कि मनुष्य ज्ञानी होकर सब के उपकार के लिए कार्यरत रहें। इससे सम्पूर्ण मानव समाज सुखी, निर्भय, शांत व समृद्ध रह

ईश्वर अपनी विशिष्ट सृष्टि, गो से अत्यंत प्रेम करते हैं। यदि हम भी उनसे प्रेम करें तो ईश्वर हम पर अवश्य ही प्रसन्न होंगे।

सकता है। परन्तु जब हम ईश्वर दत्त नियमों की उपेक्षा कर, स्वतंत्र मानसिकता से अपने आप को इस सृष्टि के स्वामी समझ बैठते हैं तो सम्पूर्ण समाज में अराजकता और उच्छृंखलता जैसे दुर्गुण फैल जाते हैं। और सम्पूर्ण समाज व्यथित रहता है। इस व्यथित अवस्था से मुक्त होकर यदि समाज आज सुखी व शांत अवस्था को प्राप्त करना चाहे तो यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने कार्यों को ईश्वर की इच्छा के अनुरूप करें। अब प्रश्न यह है कि वर्तमान उच्छृंखल अवस्था से यह समाज किस प्रकार सही दिशा में अग्रसर हो? इसका उत्तर है गो-सेवा के द्वारा। पाश्चात्य पद्धति में शिक्षित आज के मानव गण के लिए यह उत्तर संभवत: अस्वीकार्य होगा। परन्तु यही सत्य है। इस बात की चर्चा पहले की जा चुकी है कि ईश्वर को गो से कितनी प्रीति है। यदि हम मनुष्यगण भी उनसे प्रेम करें व उनकी सेवा करें तो ईश्वर अवश्य ही हमसे प्रसन्न होंगे व हम सब के हृदय में उन सभी सद्गुणों को स्वत: स्फुर्त करेंगे जिनके द्वारा हम सब मिलकर मानव समाज को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ, निर्भय, प्रगतिशील व शांत बना सकेंगे।

गो - विश्व की जननी

जब कोई शिशु अपनी माँ का दूग्ध पीना छोड़ देता है, तब उसकी पुष्टि गो-दुग्ध द्वारा होती है। माँ के दुग्ध का सबसे उत्तम विकल्प है गो का दुग्ध। हमारी माताएँ तो केवल अपने ही शिशु को दुग्ध पान करातीं हैं परन्तु गो सम्पूर्ण विश्व को दुग्ध पान कराती है। अत: वह तो विश्व की माँ है। और इस बात को न भूलें की श्री व्रजधाम में तो गो माता ने ब्रह्मांड के सृष्टिकर्ता को दुग्ध पान कराया था।

शास्त्र, जो कि ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान है, कहते हैं, *"गावो विश्वस्य मातर:"* अर्थात् गो विश्व की माँ है। माँ में अपने सन्तान का प्रेमपूवर्क नि:स्वार्थ रूप से देख रेख करने की वृत्ति होती है। अर्थात् अपने निरपराधी व परोपकारी वृत्ति द्वारा वह सन्तान की अनुकलता करती है। चूँकि

गो विश्व की माता है। व्रज में तो उन्होंने विश्व के सृष्टिकर्त्ता को भी दुग्ध पान कराया था।

गो ईश्वर की अनुकूलता करती है, वह उनकी सृष्टि में सभी के प्रति माँ जैसी निरपराधी व परोपकारी वृत्ति अपनाती है। अत: गो को विश्व की माँ की संज्ञा दी जाती है।

गो सेवा का ऐसा फल होता है कि गो सेवकों की चित्त-वृत्ति में सब के प्रति माँ जैसा नि:स्वार्थ सेवा भाव व प्रेम भाव उदित हो जाते हैं। इस का अर्थ यह है कि यदि मानव समाज में गो सेवा बड़े पैमाने पर किया जाए तो अधिकाधिक लोगों में मातृ समान सद्गुणों का व सद्भावों का उदय सम्भव है। यह माँ जैसा प्रेम भाव समाज में सब की रक्षा करता है व सब का पोषण करता है। अत: गो के विषय में बोला जाता है–

"मातर: सर्वभूतानाम् गाव: सर्वसुखप्रदा:"

"गो सब प्राणियों की माँ है व सर्व प्रकार के सुखों को देने वाली है।"

गो-सेवा का सच्चा अर्थ

जैसे कि पहले बताया जा चुका है, किसी की सेवा का अर्थ है मन व हृदय में एकता व कार्य में अनुकूलता। अत: गो को मात्र कुछ खिला देने से ही सच्ची सेवा नहीं मानी जाती है। सच्चा गो सेवक सर्वदा, सर्व अवस्था में, सर्व प्रकार से गो के हित के लिए कार्य करने को तत्पर रहता है। उसका मन इस बात पर कदापि केन्द्रित नहीं रहता है कि गो से किस प्रकार वह स्वयं लाभ उठा सके। उसका मन तो सदैव यह सोचता है कि किस प्रकार गो को तृप्त रखा जाए। वह यदि गो का दुग्ध पान करता है, तो वह बछड़े को तृप्त करने के पश्चात् जो दुग्ध बच जाए उतना ही दूहता है। इस प्रकार सच्चा गो सेवक गो माता को व बछड़े को तृप्त कर देने के पश्चात् कृतज्ञतापूर्वक उनसे दुग्ध ग्रहण करता है। इस प्रकार का दुग्ध सात्विक गुणों से परिपूर्ण रहता है तथा उसका पान करने से मानव मन सात्विक होता है व शरीर पुष्ट होता है।

सच्चे गो सेवकों का मन केवल इसी बात पर केन्द्रित रहता है कि गो का हित कैसे हो।

ऐसे लोग श्रेष्ठ मानव बनकर समाज के हित के लिए कार्य करते हैं।

सच्चा गो सेवक गो को अपने परिवार का सदस्य मानता है एवं अन्तकाल तक उसी प्रकार उनकी सेवा करता है। चूंकि गो में सभी देवी-देवता विद्यमान हैं, उनकी सच्ची सेवा से सभी देवी-देवता तुष्ट होते हैं।

"गो" केवल भारतीय नसलों को बोला जाता है

यहाँ इस बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है कि शास्त्रों में जिसे "गो" कहा जाता है, वह केवल भारतवर्ष में पाई जाने वाली गाय व साँढ़ की नसले हैं। यही वह प्राणी है जिनकी सृष्टि ईश्वर ने निरपराधी व परोपकारी प्राणी के आदर्श के रूप में किया है एवं जो ईश्वर को अत्यंत प्रिय हैं। इन्ही के शरीर में सभी देवी-देवता विद्यमान् है तथा इन्ही का गोबर पवित्रकारी है तथा इन्ही के मूत्र से सर्वप्रकार की अपवित्रता व रोगों का नाश होता है। इन्ही का दुग्ध सात्विक गुणों से परिपूर्ण है। इन्ही की सेवा से गो-सेवा का पुण्य प्राप्त होता है। इस पवित्र भूमि में पाए जाने वाले गो पुराणों में कथित दैवी "कामधेनु" के वंशज है।

३००० वर्ष पूर्व पाये गये हड़प्पा की मुद्रा में अंकित तब के भारतीय वृषभ का रूप

पाश्चात्य वैज्ञानिक गण विश्व के किसी भी स्थान में पाए जाने वाले गाय व साँढ़ की नसलों को एक ही पशु मानते हैं जिसका अंग्रेजी नाम काऊ है एवं वैज्ञानिक नाम "बोस टौरस" है। परन्तु गो की शास्त्रीय परिभाषा केवल भारतवर्ष की देशी गाय व साँढ़ के लिए ही लागू होती

एक भारतीय गाय। भारतवर्ष के शुद्ध देशी गाय व साँढ़ को ही "गो" कहते हैं। इन्हीं की महिमा शास्त्रों में कथित हैं। विदेशी नसलों के लिए एवं उनसे मिश्रित देशी नसलों के लिए गो की शास्त्रीय परिभाषा लागु नहीं होती है।

है। दूसरे देशों में गाय व साँढ़ की जो नसलें पाई जाती हैं उन्हें "गो'' नहीं कहा जाता है। उन्हें शास्त्रीय भाषा में "गवय'' कहा जाता है। आजकल गवय की कई नसलों को विदेश से भारतवर्ष में आयात किया गया है व उनकी देशी गो के साथ मिश्रित नसलें भी आजकल भारत में भारी संख्या में दिखती हैं, जिन्हें लोग गो समझ बैठते हैं। इनमें से काई भी "गो'' नहीं है।

देशी गो का पहचान ही अलग है। देशी गो के गले के नीचे झूलता हुआ गल कम्बल रहता है, पीठ पर कूबड़ रहता है, वे प्रशस्त सींग व लम्बे कानों से युक्त होते हैं। इनकी आँखों में प्रेम भाव झलकता है, इनका दुग्ध मीठा व सात्विक होता है, इनके शरीर से एक विशेष प्रकार का सुगन्ध आता है एवं इनकी गूँज में सम्पूर्ण वेद मन्त्र ध्वनित होते हैं।

मानव संस्कृति, अर्थव्यवस्था व गो

पुण्य भूमि, भारतवर्ष में गो मानव संस्कृति का मूल माना गया है। अनादि काल से इस देश की अर्थव्यवस्था गो व कृषि पर आधारित रही है। जहाँ दुग्ध व उससे बने हुए अत्पाद शरीर व मन को पुष्ट करते हैं वहीं दुग्ध से कई लोग अपनी जीविका भी चलाते हैं। गोबर को ईंधन या उर्वरक के रूप में बेचने मे भी एक नियमित आय प्राप्त होता है। साँढ़ कृषि व परिवहन के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सेवा करके देश की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाते हैं। अत: जिन परिवारों में गो का भी स्थान हो, उनकी अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होती है। गोदुग्ध के सेवन से उन परिवार के सदस्य स्वस्थ रहते हैं। विस्मयकारी गुणों से परिपूर्ण गो-मूत्र के सेवन से वे शरीरिक रोगों से दूर रहते हैं।

वैदिक संस्कृति का आधार है गो। वेद का ज्ञान स्वयं ईश्वर से आया है एवं मानव समाज के हित के लिए, महर्षि व्यासदेव ने उनका संकलन किया है। ईश्वर प्रदत्त इस शास्त्रीय ज्ञान में यह कथित है कि जिस समाज में गो की सेवा हो, वहाँ सभी देवता तुष्ट रहते हैं, जिसके फलस्वरूप वह समाज शांतिमय रहता है तथा उनकी अर्थव्यवस्था सुचारू रूप से चलती है।

आजकल, देश की अर्थव्यवस्था बड़े उद्योगों पर निर्भर करती है। औद्योगिक समाज की आर्थिक स्थिति में समय-समय पर उछाल व गिरावट आते रहते हैं। जहाँ आर्थिक उछाल के समय समृद्धि दिखती है, वहाँ आर्थिक गिरावट (Economic depression) आने पर लोग निर्धन व दु:खी दिखते हैं। परन्तु जो अर्थव्यवस्था शास्त्रों के अनुकूल रहती है, अर्थात् जो गो, कृषि व गृह उद्योग पर निर्भर करती है, वह सदैव सुचारू रूप से चलती है तथा उसमें आर्थिक उछाल व गिरावट नहीं दिखते हैं।

आज के भौतिकवाद का घृणात्मक स्वरूप

आजकल विश्वभर में असंख्य गोशालाओं व फार्महाउसों का निर्माण किया गया है जहाँ गाय से प्राप्त दूध, मांस व चमड़े को बेच कर पैसे कमाये जाते हैं। ईश्वर ने तो गो कि सृष्टि एक परोपकारी व निरपराधी प्राणी के आदर्श के रूप में किया है। परन्तु उच्छ्रङ्खलतावशत: आज का मानव अधिक से अधिक दुग्ध पाने के लिए उन्हें पीड़ा देते हैं और अन्तत: माँस व

> **गो-माँस भक्षकों की क्या गति होती है?**
>
> श्री चैतन्य महाप्रभु की उक्ति है, "गोवध करने वाले व गो माँस खाने वाले उतने सहस्त्र वर्ष तक नरक में कठोर यातना प्राप्त करते हैं जितना कि उस भक्षण की गई गो के शरीर में रोम होते हैं।"
>
> *(श्री चैतन्य चरितामृत, आदि १७.१६६)*

चमड़ा पाने के लिए अत्यंत क्रूर प्रक्रिया द्वारा इनकी हत्या करते हैं। स्वयं ईश्वर जिस प्राणी से इतना प्रेम करते हैं कि उन्होंने उसे अपने धाम में विशेष स्थान दे रखा है, उसे मानव जाति पीड़ा देकर निर्मम हत्या कर रही है। क्या ऐसे मानव जाति पर ईश्वर प्रसन्न होंगे?

ईश्वर इस विश्व को हमारे कर्म के आधार पर चलाते हैं। हम अपने कर्म का जैसा बीज बोएंगे, वैसा फल पाएंगे। आज सम्पूर्ण विश्व ईश्वर के प्रिय प्राणी की हत्या का बीज बो रहा है। इसका फल मानव समाज को दु:ख और कष्ट के रूप में मिल रहा है। यह फल सामूहिक रूप में युद्ध, आतंकवाद, महामारी, प्राकृतिक दुर्घटना, इत्यादि के रूप में मिलता है।

यह भी जान लेना आवश्यक है कि जो लोग प्रत्यक्ष रूप से गो हत्या नहीं कर रहे हैं, वह भी इस पाप में हिस्सा ले रहे हैं। कैसे? आज सम्पूर्ण भारत भूमि में लगभग सभी व्यक्ति चमड़े का उत्पाद क्रय करते हैं और कई लोग गो-माँस का भक्षण भी करने लगे हैं। इन पदार्थों के ग्राहक इनका क्रय करने के लिए कुछ अर्थ का व्यय करते हैं। यही वह अर्थ है जिससे गो की निर्मम हत्या करके इन उत्पादों को तैयार करने की प्रणाली संचालित होती है। इत: इन्हें खरीदने वाले ग्राहक गो हत्या के पाप का उतना ही भागेदार हैं जितना कि हत्या करने वाले स्वयं! आतंकवादी कुकर्मों में प्रत्यक्ष रूप से भाग न लेने पर भी, वे आतंकवादी ही हैं जो इस प्रणाली को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं।

"आकर्षक" चर्म उत्पादों के पीछे छुपी हुई है एक भयानक कथा। निरपराधी गो को उबलते हुए पानी में नहलाकर, जम के पिटाई करते हैं ताकि उनका चमड़ा उतारना सरल हो। फिर क्रूर प्रक्रिया से उनकी हत्या होती है। इन उत्पादों के क्रेता इस पाप के भागेदार हैं।

इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि चर्म के स्थान पर ऐसे कृत्रिम विकल्प आजकल बाजार में उपलब्ध हैं जिन्हें देखकर यह बताना असम्भव सा हो जाता है कि वह उत्पाद चर्म का बना है अथवा नहीं। इन उत्पादों का क्रयण करने से समाज गो हत्या के भीषण पाप से बच सकते हैं।

आजकल समाज में भौतिकवाद की हवा चली हुई है। भौतिकवादी लोग मात्र भौतिकजगत् के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। वे यह नहीं मानते हैं कि इस भौतिक

जगत का सुचारू रूप से संचालन कोई चेतन शक्ति कर रही है। अर्थात् वे लोग ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। अत: वे इस बात को भी नहीं मानते हैं कि गो की सृष्टि ईश्वर ने एक आदर्श के रूप में किया है। उनके लिए तो गो सब पशुओं में से एक है, जिसका शोषण वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए करना चाहते हैं।

परन्तु सच्चाई तो यह है कि भौतिकवादियों के समेत सभी मनुष्य ईश्वर द्वारा लागु किए गए प्राकृतिक नियमों में बद्ध हैं। चाहे वे ईश्वर व उनके नियमों के अस्तित्व को स्वीकारें या नकारें, वे सर्वदा ईश्वर के नियमों में आबद्ध हैं। अत: उनके कर्मों से ही यह निर्धारित होगा कि उन्हें सुख मिलना है या दु:ख। अत: गो-हत्या की प्रणाली में भाग लेकर यह लोग बुरे कर्म की सृष्टि करते हैं, उसका बुरा फल भुगतते हैं, पुन: बुरा कर्म करते हैं, पुन: दु:खी होते हैं, पुन: बुरा कर्म करते हैं, ... इस चक्र में आबद्ध रहकर वे दीर्घ समय तक नर्क लोक में वास करते हैं।

कुछ भौतिकवादी लोग, समाज में भारतीय संस्कृति के "विद्वान" के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर, यह बोलते हैं कि पुरातन भारत में ऋषिगण गो माँस का भक्षण करते थे। उपहास के अधिकारी हैं ऐसे "विद्वान" गण। शास्त्रों में प्राणी हिंसा का कहीं भी अनुमोदन नहीं है। चूँकी ऐसे भौतिकवादी लोग स्वयं गो माँस भक्षण करना पसन्द करते हैं, वे शास्त्र-उक्तियों को विकृत कर के यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि प्राचीन भारत के ऋषिगण गो माँस भक्षण करते थे। सत्य यह है कि गो माँस भक्षण करने वालों का विवेक उन्हें अन्दर ही अन्दर डसता रहता है। उससे छुटकारा पाने के लिए वे शास्त्रों को विकृत करके यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि शास्त्रों में गो माँस भक्षण का अनुमोदन है। उनके तर्क और युक्तियों का मुहतोड़ उत्तर देकर यह पूर्ण रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि ऋषिगण कदापि गो हत्या का चिन्तन भी नहीं करते थे। परन्तु ऐसा कार्य इस ग्रन्थ में करना सम्भव नहीं है। उसके लिए भिन्न ग्रन्थ तैयार करने की आवश्यकता है।

वेदों में १३७ स्थानों पर गो के लिए "अघ्न्या" शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ होता है "जिनकी हत्या नहीं की जा सकती"। वैदिक संस्कृति है ईश्वर प्रदत्त संस्कृति जो कि सम्पूर्ण मानव जाति के हित के लिए है। इस संस्कृति में गो-हत्या सम्पूर्ण रूप से वर्जित है, तो गो-माँस भक्षण का प्रश्न ही कहाँ उठता है? उदाहरणार्थ, अथर्व वेद (४.२१) में कथित है-

"प्र नु वोचं चिकितेषु जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ।"

"प्रत्येक विचारशील मनुष्य को यही समझाकर हमने कहा है
कि निरपराधी एवं अवध्य गो का वध न करें।"

अत: हर विज्ञ व्यक्ति से यह सनिर्बन्ध अनुरोध है कि वह इस पवित्र प्राणी, गो की सेवा का महत्व को समझे। मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के इच्छुक सुधीगण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से गो-सेवा में प्रवृत्त हो जाएं तो उन्हें अचिन्त्य फल प्राप्त होंगे।

''श्री हरिदास निवास'' - एक आदर्श गो-शाला

आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व
भगवान् श्री कृष्ण का अपने लीला
परिकरों के साथ आविर्भाव हुआ था
परमधाम श्री वृन्दावन में।
उसी परमधाम में स्थित है
एक लीला स्थली– ''कालीदह''
जहाँ श्री कृष्ण ने कालिया नाग का
दमन किया था। उसी लीला स्थली
पर आज स्थित है ''श्री हरिदास निवास''
एक ऐसा आश्रम जो कि मानो श्रीकृष्ण
के द्वारा स्थापित आदर्शों का एक
मूर्तिमान स्वरूप हो, जहाँ कि आज के
जघन्य भौतिकवाद का
आभास भी न होता हो।

संस्थापक

इस पवित्र आश्रम "श्री हरिदास निवास" के प्रतिष्ठाता हैं श्री व्रज मण्डल में सुकीर्तिलब्ध, श्रोत्रीय, ब्रह्मनिष्ठ संत-शिरोमणि परम भक्त श्री श्री १०८ हरिदास शास्त्री महाराज जी। नब्बे वर्ष से भी अधिक उम्र वाले श्री महाराज जी अपनी आध्यात्मिक शक्ति को इस पावन आश्रम में विकीर्ण कर रहे हैं उन दिनों से जब श्री वृन्दावन धाम जंगलों से ढका था। विरल हैं आज के समय में इस प्रकार के सर्वशास्त्रज्ञ महापुरूष। वृन्दावन में रहकर कई वर्षों तक गरु-सेवा

"श्री हरिदास निवास" के संस्थापक श्री हरिदास शास्त्री महाराज जी, जो सम्पूर्ण व्रज मंडल के सुविख्यात संत हैं एवं अद्वितीय शास्त्रज्ञ हैं।

करने के पश्चात् गुरुजी के आदेश से आप ने वाराणसी जाकर संस्कृत शिक्षा पद्धति में विभिन्न विषयों में तेरह उपाधियाँ प्राप्त की, जैस व्याकरण तीर्थ, काव्य तीर्थ, न्याय आचार्य, तर्क तीर्थ, वेदान्त तीर्थ, विद्या रत्न, इत्यादि।

श्री चैतन्य महाप्रभु के अनन्य उपासक, श्री महाराज जी आज भी महाप्रभु-प्रदत्त "भक्ति" तत्व को अपने मूल, अविकृत रूप में धारण किए हुए हैं। "एकता" व "अनुकूलता" की शिक्षा स्वयं श्री कृष्ण ने जगत को आज से पंच सहस्त्र वर्ष पूर्व प्रदान किया था। इसी शिक्षा को महाराजजी आधुनिक जगत् के लिए पुनर्जीवित किए हैं। आप से यह सीख मिलती है कि किस प्रकार एकता व अनुकूलता को अपनाने से सम्पूर्ण मानव समाज एकबद्ध होकर प्रगतिशील, सुखी, समृद्ध एवं शांतिमय जगत् का निर्माण कर सकते हैं। अप्रतिम गो-सेवा द्वारा महाराजजी इस निगूढ़ तत्व को एक व्यावहारिक रूप से जगद्वासियों को समझाते हैं।

गो-सेवा, वास्तविक सेवा का स्वरूप

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, गो का प्राकृत स्वरूप है परोपकारिता का, जिसके द्वारा वह

ईश्वर की सृष्टि की अनुकूलता करते हैं। परन्तु आधुनिक मानव जाति, व्यावसायिक उन्नति के लिए गो के इस परोपकारी भाव का अवैध लाभ उठाते हैं-यहाँ तक कि उनकी निर्मम हत्या कर देते हैं। धिक्कार है ऐसी मानव जाति पर !

परन्तु यहाँ श्री हरिदास निवास में एक विपरीत भाव दिखता है - मानव गण गो की अनुकूलता करते हैं। यहां पर गो से किसी प्रकार का व्यावसायिक लाभ नहीं उठाया जाता है। गोबर, गोमूत्र या दूध से भी नहीं। यहाँ गो की एक मात्र नि:स्वार्थ सेवा ही दिखती है जो अनुशासन, नैतिकता एवं कर्तव्यता के साथ की जाती है। यही तीन गुण धर्म के आधार-स्तम्भ हैं।

अनुकूलता के मूर्तिमान स्वरूप, श्री महारज जी ठीक वही करते हैं जो स्वयं भगवान को अत्यंत प्रिय है- गो की नि:स्वार्थ सेवा। इस सेवा के द्वारा जहाँ एक ओर गो व स्वयं भगवान् तुष्ट होते हैं, वहाँ दूसरी ओर जगत वासी गण इस प्रकार की असाधारण सेवा का प्रत्यक्ष दर्शन कर धन्य होते हैं व स्वयं सेवा में प्रेरित होते हैं।
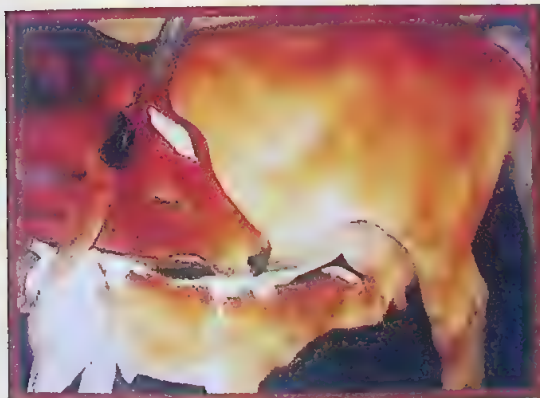
इस गोशाला में गो का प्रयोग किसी व्यवसाय के लिए नहीं होता है, उनका दुग्ध बछड़े की पूर्ण संतुष्टि के लिए छोड़ दिया जाता है।

इस पवित्र गोशाला में बछड़ों को पूर्ण स्वतंत्रता दी जाती है माँ का दुग्ध यथेच्छा पान करने की। यह बछड़े जन्म से ही प्रेम और अनुकूल परिस्थिति के अलावा और कुछ अनुभव ही नहीं करते हैं। इससे वह स्वस्थ व शांति-प्रिय बनते हैं। फलस्वरूप इस आश्रम के विशालकाय साँढ़ भी इतना शांत स्वभाव के हैं कि छोटे बच्चे भी उनके साथ निर्भय होकर खेलते हैं। महाराज जी इससे यह दर्शाते हैं कि यदि मानव समाज में शिशुओं को बाल्य काल से ही प्रेम-पूर्ण व अनुकूल परिस्थिति में पालन-पोषण किया जाए तो वह

श्री हरिदास निवास के बछड़े-बछिये, जन्म से ही केवल प्रेम और अनुकूल परिस्थिति का अनुभव करते हैं।

प्रेम व अनुकूल परिस्थिति में पले जाने के कारण, विशाल साँढ़ भी शांत स्वभाव के होते हैं, यहाँ तक की छोटे बच्चे भी उनके साथ निर्भय हो कर खेलते हैं।

बछड़े-बछियों को शीत ऋतु में वैसे ही सुरक्षित रखा जाता है जैसे हमलोग अपने शिशुओं को रखते हैं।

नवजात बछड़े-बछियों को दुग्ध पान के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, दुग्ध पर तो मूल अधिकार उन्हीं का हैं।

बड़े होकर शांत स्वभाव के ही बनेंगे जो कर्तव्य परायण, अनुशासन-शील व नैतिकता-पूर्ण नागरिकों के रूप में मानव समाज को नई दिशा दिखाएंगे।

एक अनुपम आश्रम - गो सेवा के लिए

आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व श्री हरिदास-निवास में मात्र एक गो से शुभारम्भ की गयी थी गो-सेवा की। आनुकूल्य-पूर्ण इस गो-सेवा द्वारा आज इनकी संख्या लगभग २५० हो गयी है, और इनकी संख्या का निरंतर विस्तार हो रहा है। प्रत्येक गो-माता व साँढ़ की, परिवार के सदस्य के समान, सेवा की जाती है। उनकी हर आवश्यकता की पूर्ति प्रेम-पूर्वक व दायित्व के साथ की जाती है। इस गोशाला की देखभाल वैसे ही की जाती है जैसा विवरण श्री पद्म-पुराण (सृष्टि ४८. ११२-११३) में मिलता है-

गोशाला के कुछ विशाल साँढ़ों के लिए अपने-अपने कक्ष बने हैं जहाँ उन्हें बिना बाँधे रखा जाता है।

आत्मन: शयनीयस्य सदृशं कारयेद्बुध:।
समं निर्वापयेद्यत्नाच्छीत–वात–रजस्तथा।
प्राणस्य सदृशे पश्येग्दाम् च सामान्यविग्रहम्।।

"बुद्धिमान व्यक्तिगण गो-शाला को अपने शयन कक्ष के समान बनाए रखें। प्रयत्न कर के उसे शीत, हवा व धूल से बचाए रखें। यद्यपि गो सामान्य पशु जैसा दिखते हैं, उन्हें अपने प्राण के समान देखें।''

श्री हरिदास-निवास में गो-शाला का रक्षण-पोषण ठीक इसी रूप से की जाती है। विस्तृत गो

आश्रम वासी एवं कर्मचारी गण प्रयत्न पूर्वकर गोशाला को स्वच्छ रखते हैं। यहाँ गो के लिए बिजली के प्रकाश व पंखे भी लगे हैं।

गोशाला से संलग्लन खेत में वर्मिकल्चर की निगरानी करते हुए महाराज जी

शालाओं में गो रखे जाते हैं जिससे कि प्रत्येक प्राणी को पर्याप्त स्थान प्राप्त हो। कुछ विशालकाय साँढ़ों के लिए अपने-अपने कक्ष भी बने हैं जहाँ उन्हे बिना बाँधे रखा जाता है। गो-शाला में स्वच्छता बनाए रखने के लिए विशेष प्रयत्न किए जाते हैं। प्रत्येक गो को उचित व पर्याप्त भोजन दिया जाता है। गो-शाला में नियमित क्रम से सब कार्य सुचारू रूप से चलते रहते हैं। उसमें आश्रम के निवासी व गो-शाला के कर्मचारियों का पूरा योगदान है। प्रतिदिन आश्रम के भीतर खुले भूमि में विचरण करने के लिए उन्हें छोड़ दिया जाता है। किसी गो के अस्वस्थ होने पर उनके उपचार की व्यवस्था तत्काल की जाती है। एक पशु-चिकित्सक नियमित रूप से गोशाला में आते हैं।

तेहरा गोशाला से संलग्लन खेत में केवल गो के लिए हरे चारे जैवी खेती द्वारा उगाए जाते हैं।

आश्रम में गो के लिए खुली भूमि व विस्तृत गोशाला

गो-शाला के सभी कर्मचारियों का आवास स्थान आश्रम में ही है। वे पूर्वनिर्धारित समय से अपना कार्य करते हैं। इस गोशाला में निष्कपट भाव से गो-सेवा करने वाले प्रत्येक सेवक को एक प्रीति का अनुभव होता है।

गो की संख्या निरंतर बढ़ने पर श्री वृन्दावन के निकट स्थित तेहरा ग्राम में गो-शाला की एक शाखा खोली गई। विस्तृत इमारत व विचरण की भूमि के साथ-साथ वहाँ खेती के लिए भी

आश्रम में गोशाला के कर्मचारियों का आवास

तेहरा-स्थित गोशाला का प्रवेश द्वार

भूमि है जहाँ गो के लिए ताजे हरे चारे उगाए जाते हैं। यहाँ सम्पूर्ण खेती जैवी है, अर्थात् यहाँ किसी प्रकार का कृत्रिम रसायन पदार्थ का प्रयोग फर्टिलाइजर या कीटनाशक के रूप में नहीं होता है। वर्मिकल्चर के द्वारा गोबर से प्राप्त खाद का प्रयोग होता है। इससे महाराज जी दर्शाते हैं कि किस प्रकार मानव अपनी खेती प्रणाली को कृत्रिम रासायनिक पदार्थों से मुक्त कर सकते हैं और विश्व भर की खेती करने की पद्धति में एक आंदोलन-सा आ सकता है। इस उद्यम से मानव जाति पर्यावरण को ठीक उसी प्रकार बनाए रख सकती है जैसा की ईश्वर चाहते हैं, अर्थात् मानव जाति ईश्वर का आनुकूल्य कर सकते हैं।

लड्डू द्वारा अनुकूलता!

लड्डू! यह गो प्रेम की एक अद्भुत अभिव्यक्ति है श्री हरिदास निवास गो-शाला में। बाजार से सर्वप्रथम उत्तम सामग्रियाँ मंगाई जाती हैं। उसके पश्चात् हलवाइयों को बुलाकर आश्रम वासियों के सतर्क निगरानी में गो के लिए लड्डू बनवाए जाते हैं। इससे यह सुनिश्चित रहता है कि प्रत्येक गो को स्वादिष्ट लड्डू से तृप्त किया जाए।

गो के लिए प्रितिदिन आश्रम में लगभग ४० किलो स्वादिष्ट लड्डू बनाए जाते हैं।

महाराज जी गो को लड्डू खिलाते हुए

महाराज जी के आगमन के लिए आतुर गो

एक साँढ़ महाराज जी के कर कमलों को स्पर्श करने की चेष्टा में।

प्रतिदिन लगभग ४० किलो लड्डू गो को प्रेम पूर्वक खिलाया जाता है। महाराज जी स्वयं प्रतिदिन गो को ध्यान में रखते हुए, लड्डू की गिनती करके अलग-अलग झोले तैयार करते हैं। इस दीर्घ समय लगने वाले कार्य में कभी भी महाराज जी जल्दबाजी करते हुए नहीं दिखते हैं। एक प्रेममयी माँ के भाँति आप धैर्य के साथ इस कार्य को करते हैं।

उधर गो-शाला के गो भी उत्सुकता के साथ महाराजजी की प्रतीक्षा करते हैं और आप का आगमन होते ही एक प्रेम भाव का अद्‌भुत आदान-प्रदान दिखता है। आप प्रत्येक प्राणी के समीप जा कर उन्हें लड्डू देते हैं, उनका लाड करतें हैं एवं निरीक्षण करते हैं कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति किस रूप से की जा रही है। उनके अस्वस्थ होने पर आप स्वयं उनकी देखभाल करते हैं। आप का मनोभाव पूर्णरूप से इसी बात पर केन्द्रित रहता है कि गो को किस प्रकार तृप्त किया जाए। महाराज जी इस प्रकार दर्शाते हैं कि अनुकूलता का सच्चा अर्थ क्या है। महाराज जी और गो के बीच का प्रेम भाव की गहराई को समझने में सांसारिक लोगों को सम्भवत: कई जन्म लग जाएँ। जिस भाव से इस आश्रम में गो की सेवा की जाती है, वह इस जगत् में अत्यन्त विरल है।

महाराज जी स्वयं गो की देखभाल करते हुए

"गो भगवान के भी भगवान हैं।"

हम सब जगद्वासी भगवान श्री कृष्ण की आराधना करते हैं। परन्तु भगवान स्वयं किनकी पूजा में लगे हैं? श्री कृष्ण की व्रज लीलाओं से यह स्पष्ट होता है कि भगवान स्वयं पूजा करते हैं गो की। शास्त्रों में भगवान कहते हैं, "*अहम् भक्त–पराधीन:*" अर्थात् "मैं तो भक्तों के पराधीन हूँ।" उनका अपने भक्तों से इतना लगाव है, कि वह अपने आप को उनके अधीन रख कर

हम सब श्रीकृष्ण को पूजते हैं पर वह पूजते हैं गो को। अत: महाराज जी कहते हैं, "गो भगवान के भी भगवान हैं।''

भगवान श्री कृष्ण मनुष्य को गो-सेवा के लिए प्रेरित करते हुए

उनकी उपासना करने में आनन्द लेते हैं। इसका उदाहरण हम लोगों ने उनके गोवर्धन-धारण लीला में देखा। चूँकी गोवर्धन पर्वत श्रीकृष्ण के भक्त थे एवं गोवंश का वर्धन करते थे, उन्होंने जगत में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी और उस पर्वत का पूजन व्रजवासियों से करवाया। गोवंश की सेवा करने वालों का जब भगवान पूजन करवाते हैं तो स्वयं गो का कहना ही क्या? परम भक्त के रूप में जन्म लेने वाले प्राणी - गो तो एकता और अनुकूलता की पराकाष्ठा हैं। स्वयं भगवान भी उनकी सेवापूजा से आनन्दित होते हैं। अत: महाराज जी कहते हैं "गो भगवान के भी भगवान हैं।'' श्री हरिदास निवास में महाराज जी की इसी महावाक्य जैसी उक्ति को समाने रख कर भक्त गण पूर्ण श्रद्धा से गो की सेवा व पूजन करते हैं।

''श्री हरिदास निवास'', आध्यात्मिकता का एक अनुपम केन्द्र

"श्री हरिदास निवास'' के मध्य में स्थित है एक सुन्दर मंदिर जिसका निर्माण महाराजजी ने दैवी प्रेरणा पाकर किया। मंदिर में विराजमान हैं श्री गौरांग महाप्रभु, श्री गदाधर पंडित गोस्वामी, श्री गोविन्द-देव एवं श्रीमती राधारानी। उसके अलावा आश्रम में "श्री हरिदासेश्वर" नाम से

आश्रम में श्री हनुमान मंदिर व श्री विनोद बिहारी गोस्वामी जी का समाधि मंदिर

"श्री हरिदास निवास" आश्रम का मुख्य मंदिर

विराजमान हैं श्री हनुमान जी। एक समाधि मंदिर भी स्थित है श्री विनोद-बिहारी गोस्वामी जी का जो कि श्री महाराज जी के पूज्य गुरुजी थे। "श्री गदाधर-गौरहरि प्रेस" आश्रम का ग्रन्थ प्रकाशन विभाग है तथा "श्री गौर-गदाधर ग्रन्थागारम्" में विद्यमान हैं विभिन्न सम्प्रदायों व परंपराओं के सहस्त्रों ग्रन्थ व कई प्राचीन अनमोल पाण्डुलिपियाँ।

महाराज जी की इच्छा है कि सठीक शिक्षा पद्धति जगत् में स्थापित हो जिससे मानव समाज का कल्याण हो सके। शास्त्रीय शिक्षा प्रदान करने के अलावा महाराज जी अपने व्यक्तिगत आचरण से व गो-सेवा के माध्यम से परम सत्य को दर्शाते हैं जिसमें सम्पूर्ण मानव समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने की शक्ति है। जगत् के कोने-कोने से आध्यात्मिक विषयों के जिज्ञासु व्यक्तिगण श्री हरिदास निवास में पधारते हैं एवं संत-शिरोमणि महाराज जी के मुखारविन्द से परम सत्य का विवरण पाकर अपने जीवन को धन्य मानते हैं। पवित्र प्राणी, गो की सेवा में हाथ बटाकर भी कई साधकगण अपने जीवन में अचिन्त्य आध्यात्मिक फल प्राप्त करते हैं।

बाह्य आडम्बर से वंछित "श्री हरिदास निवास" की विशुद्ध आध्यात्मिक शक्ति एक ज्योति के रूप में मार्गदर्शन करती है उन सबों का जो अज्ञानता के अंधकार से पदार्पण करना चाहते हैं परम सत्य के जगत् में !

मुख्य मंदिर के विग्रह। विग्रह परिचय (बायें से) श्री गौरांग महाप्रभु, श्री गदाधर पंडित गोस्वामी, श्री गोविन्ददेव एवं श्रीमती राधारानी।

आश्रम मे प्रवचन देते हुए महाराज जी। विश्व के कोने-कोने से जिज्ञासुगण पधारते हैं महाराज जी के मुखारविन्द से शास्त्रों के निगूढ़ तत्त्व को समझने के लिए

उपसंहार

प्राय: देखा जाता है कि साधकगण विभिन्न देवी-देवताओं को तुष्ट करने के अभिप्राय से दुर्गम तीर्थ यात्राओं पर जाते हैं अथवा दुष्कर व्रत करते हैं। परन्तु सभी तीर्थों का फल व सभी व्रतों का फल सुलभ हो जाते हैं मात्र गो-सेवा से क्योंकि इस पवित्र प्राणी को तुष्ट करने से सभी देव-देवियाँ एवं भगवान् स्वयं तुष्ट होते हैं।

आजकल भौतिकवादीगण मानव समाज से दया, नि:स्वार्थ सेवा, प्रभृति सद्‌गुणों को समाप्त करने में लगे हैं। और इन सद्‌गुणों के बिना मानव समाज एवं पशु समाज में काई अंतर नहीं रह जाएगा। अत: आज के समस्त सुधीगणों का यह कर्तव्य बनता है कि मानव समाज के आधार स्तम्भ गो की रक्षा करें क्योंकि गो ही सब मानवीय सद्‌गुणों का आदर्श है।

आइए हम सब एक होकर गो के आदर्शत्व को समझें तथा भारतवर्ष में इस पवित्र प्राणी को जिस पूजनीय पद पर सदैव रखा जाता था, उसी पद पर इन्हें पुन: स्थापित करें। इससे ईश्वर भी संतुष्ट होंगे। "श्री हरिदास निवास" में समस्त सुधीगणों का आमंत्रण है, जहाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से गो सेवा में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

आइए!
पवित्र गो की रक्षा करें!
ईश्वर का आर्शीवाद प्राप्त करें!
समस्त इच्छाओं की पूर्ति करें!
इस मानव जीवन को सफल बनाएं!

यथा सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजंगमम्।
तां धेनुं शिरसा वन्दे भूतभव्यस्यमातरम्॥

"जो धेनु इस स्थावर-जंगम जगत् में पूर्ण रूप से व्याप्त हैं, एवं जो भूत और भविष्य की माँ हैं, उन्हें मैं शीश झुकाकर प्रणाम करता हूँ।"

–महाभारत (अनुशासन ८०.१५)

श्री ब्रह्मा जी कहते हैं

अस्य कायो मया सृष्टः पुरैव पोषणं प्रति।
अत एवं मया दत्तं वरं चातिसुशोभनम्।।
एकजन्मनि स मोक्षस्तवास्त्विति विनिश्चतम्।।
अत्रैव ये मृता गावस्त्वागच्छन्ति ममालयम्।
पापस्य कणमात्रस्तु तेषां देहे न तिष्ठति।।

पुराकाल में मैंने सब के पोषण के लिए गो की सृष्टि की। अतः मेरे द्वारा उनको एक अति सुशोभन वरदान दिया गया - "एक जन्म के पश्चात् ही तुम्हारा निश्चित मोक्ष हो।" अतः मृत्यु के पश्चात् गो मेरे धाम को आ जाते हैं। पाप का कोई कण भी उनके देह में नहीं बसता है।

पद्म पुराण, सृष्टि, ४५.१३०-१३२

सुरभीदेवी को प्रणाम

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः।
गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके।।
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः।।
कल्पवृक्ष स्वरूपायै सर्वेषां सततं परे।
क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः।।
शुभायै च सुभद्रायै गोपप्रदायै नमो नमः।
यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः।।

देवीभागवत ९.४९.२४-२७
ब्रह्मवैवर्त. प्रकृति ४७.२४-२७

श्रीहरिदास शास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

क्रम	सद्ग्रन्थ	मूल्य
१.	वेदान्तदर्शनम् भागवत भाष्योपेतम्	१५०.००
२.	श्रीनृसिंह चतुर्दशी	१०.००
३.	श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	२०.००
४.	श्रीगौरगोविन्दार्चनपद्धति	२०.००
५.	श्रीराधाकृष्णार्चनदीपिका	२०.००
६-७-८	श्रीगोविन्दलीलामृतम्	४५०.००
९.	ऐश्वर्यकादम्बिनी	३०.००
१०.	श्रीसंकल्पकल्पद्रुम	३०.००
११-१२	चतुःश्लोकीभाष्यम्, श्रीकृष्णभजनामृत	३०.००
१३.	प्रेमसम्पुट	४०.००
१४.	श्रीभगवद्भक्तिसारसमुच्चय	३०.००
१५.	ब्रजरीतिचिन्तामणि	४०.००
१६.	श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	३०.००
१७.	श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश	५०.००
१८.	श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	५.००
१९.	श्रीहरिभक्तिसारसंग्रह	५०.००
२०.	धर्मसंग्रह	५०.००
२१.	श्रीचैतन्यसूक्तिसुधाकर	१०.००
२२.	श्रीनामामृतसमुद्र	१०.००
२३.	सनत्कुमारसंहिता	२०.००
२४.	श्रुतिस्तुति व्याख्या	१००.००
२५.	रासप्रबन्ध	३०.००
२६.	दिनचन्द्रिका	२०.००
२७.	श्रीसाधनदीपिका	६०.००
२८.	स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वनिरुपणम्	१००.००
२९.	श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
३०.	श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	१००.००
३१.	श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्	३०.००
३२.	श्रीगौरांग चन्द्रोदय	३०.००
३३.	श्रीब्रह्मसंहिता	५०.००
३४.	भक्तिचन्द्रिका	३०.००
३५.	प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	५०.००
३६.	वेदान्तस्यमन्तक	४०.००
३७.	तत्वसन्दर्भः	१००.००
३८.	भगवत्सन्दर्भः	१५०.००
३९.	परमात्मसन्दर्भः	२००.००
४०.	कृष्णसन्दर्भः	२५०.००
४१.	भक्तिसन्दर्भः	३००.००
४२.	प्रीतिसन्दर्भः	३००.००
४३.	दशःश्लोकी भाष्यम्	६०.००
४४.	भक्तिरसामृतशेष	१००.००
४५.	श्रीचैतन्यभागवत	२००.००
४६.	श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	१५०.००
४७.	श्रीचैतन्यमंगल	१५०.००
४८.	श्रीगौरांगविरुदावली	४०.००
४९.	श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत	१५०.००
५०.	सत्संगम्	५०.००
५१.	नित्यकृत्यप्रकरणम्	५०.००
५२.	श्रीमद्भागवत प्रथम श्लोक	३०.००
५३.	श्रीगायत्री व्याख्याविवृतिः	१०.००
५४.	श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२५०.००
५५.	श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	३०.००
५६-५७-५८	श्रीहरिभक्तिविलासः	६००.००
५९.	काव्यकौस्तुभः	१००.००
६०.	श्रीचैतन्यचरितामृत	२५०.००
६१.	अलंकारकौस्तुभ	२५०.००
६२.	श्रीगौरांगलीलामृतम्	३०.००
६३.	शिक्षाष्टकम्	१०.००
६४.	संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	८०.००
६५.	प्रयुक्ताख्यात मंजरी	२०.००
६६.	छन्दो कौस्तुभ	५०.००
६७.	हिन्दुधर्मरहस्यम् वा सर्वधर्मसमन्वयः	५०.००
६८.	साहित्य कौमुदी	१००.००
६९.	गोसेवा	४०.००
७०.	पवित्र गो	५०.००

बंगाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

क्रम	सद्ग्रन्थ	मूल्य
१.	श्रीबलभद्रसहस्रनाम स्तोत्रम्	१०.००
२.	दुर्लभसार	१०.००
३.	साधकोल्लास	५०.००
४.	भक्तिचन्द्रिका	४०.००
५.	श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२०.००
६.	श्रीराधारससुधानिधि (सानुवाद)	३०.००
७.	श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय	३०.००
८.	भक्तिसर्वस्व	३०.००
९.	मनःशिक्षा	३०.००
१०.	पदावली	३०.००
११.	साधनामृतचन्द्रिका	४०.००
१२.	भक्तिसंगीतलहरी	२०.००

अंग्रेजी भाषा में मुद्रित ग्रन्थ

क्रम	सद्ग्रन्थ	मूल्य
1.	Padyavali	200.00
2.	Goseva	50.00
3.	The Pavitra Go	80.00

इस विषय पर अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें -

श्री हरिदास शास्त्री
"श्री हरिदास निवास"
प्राचीन कालीदह,
वृन्दावन-२८११२१
जिला-मथुरा (उ०प्र०)

दूरभाष - (०५६५) ३२०२३२२, ३२०२३२५
मोबाईल-९४३११३३१०१, ९९५५१४१९५९
ई-मेल-gosevamailbox@rediffmail.com

लेखकों का परिचय

श्री जपेश बन्द्योपाध्याय ने आई०आई०टी० कानपुर से मेकैनिकल इंजीनयरिंग में डिग्री प्राप्त की है। वर्त्तमान में वह टाटा उद्योग में अधिशासी के रुप में कार्यरत हैं। उनकी पत्नी, श्रीमति पारोमिता बन्द्योपाध्याय ने पुणे के डी०एम०एस० होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेज से डिग्री प्राप्त की है। वर्तमान में वह एक होम्योपैथिक चिकित्सिका के रुप में कार्यरत हैं। दोनों ही परम पूज्य श्री श्री हरिदास शास्त्री महाराज जी के शिष्य हैं, जिनकी शरण में वे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा बताए हुए मार्ग में साधनरत हैं।

आधुनिक जगत में गो सेवा के आदर्श का मूर्त्तिमान स्वरुप, श्री श्री हरिदास शास्त्री महाराज जी, अपने गो के संग, जिन्हें आप अपने परिवार के सदस्य मानते हैं।

एक बार इन्द्र ने श्री ब्रह्माजी से पूछा कि गो क्यों देवता के लोकों से भी अति उच्चतम लोक, "गोलोक" में रहते हैं। श्री ब्रह्माजी ने कहा–

यज्ञांगं कथिता गावो यज्ञ एव च वासव। एताभिष्च विना यज्ञो न वर्तेत कथंचन।।
धारयन्ति प्रजाष्चैव पयसा हविशा तथा। एतासां तनयाष्चापि कृशियोगमुपासते।।
जनयन्ति च धान्यानि बीजानि विविधानि च। ततो यज्ञाः प्रवर्तन्ते हव्यं कव्यं च सर्वषः।।
पयो दधि घृतं चैव पुण्याष्चैता सुराधिप। वहन्ति विविधान् भारान् क्षुत्तृशापरिपीडिताः।।
मुनींष्च धारयन्तीह प्रजाष्चैवापि कर्मणा। वासवाकूटवाहिन्यः कर्मणा सुकृतेन च।।
उपरिश्टात्ततोऽस्माकं वसन्त्येताः सदैव हि। एवं ते कारणं षक्र निवासकृतमद्य वैं।।

गो को यज्ञ का अंग एवं साक्षात् यज्ञ ही कहा गया है। हे वासव! इनके बिना किसी प्रकार भी यज्ञ नहीं हो सकता है। गाय अपने दूध और घी से प्रजा का धारण-पाषण करतीं हैं। इनके पुत्र, बैल खेती के काम में आते हैं और विविध प्रकार के धान व बीज पैदा करते हैं। उनसे यज्ञ होते हैं और हव्य-कव्य का कार्य सम्पादन होता है। इन्हीं से दूध, दही और घी मिलते हैं। ये गो बड़े पवित्र होते हैं। बैल भूख और प्यास का कष्ट सहकर भी विविध प्रकार के भार ढोते हैं। अपने कर्म से यह मुनियों व प्रजाओं का धारण-पोषण करते रहते हैं। इनके व्यवहार में शठता व कपटता नहीं होती है। एवं यह सदा अच्छे कर्म में लगे रहते हैं। इसलिए, हे देवराज! यह गो हम सब के लोकों से ऊपर गोलोक में निवास करते हैं।

(महाभारत, अनुशासन ८३.१८-२२)